अथर्ववेद के परिप्रेक्ष्य में समुद्र तत्त्व की पर्यावरणीय अवधारणा

डॉ० रोशन सिंह
सहायक आचार्य, नूर जहाँ डिग्री कॉलेज हरदोई

शोध–सार

मनुष्य, जीव स्थावर–जन्म आदि पदार्थों के चारो ओर आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि व्याप्त हैं। सम्पूर्ण भू–मण्डल इन पंच तत्त्वों से आवृत्त है। इन पंच भौतिक तत्त्वों से आवृत्त रहने के बाद ही जीव अपने अस्तित्त्व को धारण करने में समर्थ होता है। जीवन में प्रकृतिभूत जिन तत्त्वों का विशेष रूप में प्रभाव देखा जाता है, वे सभी तत्त्व पर्यावरण के रूप में परिगणित होते हैं। आदिकाल से ही मानव जीवन का प्रकृति से घनिष्ठतम् सम्बन्ध रहा है। जिस प्रकार प्रकृति पंच महाभूतों का वृहद् समन्वय है, उसी प्रकार मानव का शरीर भी इन्हीं पंच महाभूतों से निर्मित है और उसका पर्यवसान भी इन्हीं तत्त्वों में ही होता है। आधुनिक मानव अपने जीवन को भौतिक सुखों से युक्त करने के लिए प्राकृतिक सम्पदाओं का आवश्यकता से अधिक दोहन कर रहा है। जिसके दुष्परिणाम सम्पूर्ण सृष्टि को भोगने पड़ रहे हैं। इन भौतिक सुखों से मानव जितना सुखी और सम्पन्न हो रहा है, उससे कहीं अधिक आन्तरिक दृष्टि से दुःखी होता जा रहा है। अथर्ववेद में पर्यावरणीय घटकों का भण्डार है,जिनमें समस्त प्राणिवर्ग का कल्याण निहित है। इन तत्त्वों में इस जगत् के अनेक प्रकार के विशेष रत्नों को समुद्र अपने गर्भ में समाहित किये हुए है। सत्तर प्रतिशत से अधिक सतह समुद्र के खारे पानी से व्याप्त है। समुद्र पृथ्वी पर पर जलवायु को संयमित करने, भोजन और आक्सीजन प्रदान करने, जैव विविधता को बनाये रखने और परिवहन के क्षेत्र में अपनी विशेष भूमिका का निर्वहन किस प्रकार करता है एवं उसके प्रमुख घटक कौन–कौन से हैं? इन सभी बिन्दुओं को शोधपत्र में समाहित करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्दः *अथर्ववेद, पर्यावरण, जल।*

पर्यावरण' शब्द परि+आ+वृ धातु + ल्युट् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है। परि और आ उपसर्ग हैं, जिनके अर्थ हैं– चारो ओर से, सभी ओर से। 'परि' के 'इ' को यण् आदेश हो जाता है। 'वृ' धातु का अर्थ है– वरण करना। 'वृ' धातु के 'ऋ' को 'अर्' आदेश होता है। 'ल्युट्' प्रत्यय के 'ल्' और 'ट्' का लोप होने पर 'यु' शेष रहा जिसे 'अन' आदेश तथा 'अन' के 'न' को णत्त्व विधान होकर 'पर्यावरण' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ है जो चारो ओर से आवृत्त करता हो, ढँकता हो वह पर्यावरण है।

अथर्ववेद में पर्यावरणीय घटकों का भण्डार है, जिनमें समस्त प्राणिवर्ग का कल्याण निहित है। इन तत्त्वों में इस संसार में विशिष्ट रत्नों को अपनी गोद में ग्रहण करने वाला तथा जलराशि का भण्डार समुद्र है, जिसका सम्पूर्ण संसार के प्राणियों पर साक्षात् प्रभाव है। पृथ्वी की सतह के 70 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में फैला सागर खारे पानी का एक सतत् निकाय है। पृथ्वी पर जलवायु को संयमित करने, भोजन और ऑक्सीजन प्रदान करने, जैव विविधता को बनाए रखने और परिवहन के क्षेत्र में समुद्र अत्यावश्यक भूमिका निभाते हैं।

समुद्र के पानी की विशेषता इसका खारा या नमकीन होना है। पानी को यह खारापन मुख्य रूप से ठोस सोडियम क्लोराइड द्वारा मिलता है, लेकिन पानी में पोटेशियम और मैग्नीशियम के क्लोराइड के अतिरिक्त विभिन्न रासायनिक तत्त्व भी होते हैं जिनका संघटन पूरे विश्व में फैले विभिन्न सागरों में बमुश्किल बदलता है। हालांकि पानी की लवणता में भीषण परिवर्तन आते हैं, जहाँ यह पानी की ऊपरी सतह और नदियों के मुहानों पर कम होती है, वहीं यह पानी की ठंडी गहराइयों

में अधिक होती है। सागर की सतह पर उठती लहरें इनकी सतह पर बहने वाली हवा के कारण बनती है। भूमि के पास उथले पानी में पहुँचने पर यह लहरें मंद पड़ती हैं और इनकी ऊँचाई में वृद्धि होती है, जिसके कारण यह अधिक ऊँची और अस्थिर हो जाती हैं।

निरुक्त में समुद्र शब्द का निर्वचन विभिन्न रूपों में किया गया है–

(क) समुदद्रवन्त्यस्मादापः।

अर्थात् इसमें से जलराशियाँ तरंगों के रूप में ऊपर उठती हैं। इसका निर्वचन सम् + उत् + द्रव धातु से सिद्ध होता है।

(ख) समभिद्रवत्येनमापः।

इसको सब ओर से जलराशियाँ इकट्ठी होकर प्राप्त होती हैं। नदियों के जल सब ओर से आ–आकर इसी में मिलते हैं। यह पार्थिव समुद्र की व्याख्या है। इसका निर्वचन सम् + अभि + द्रव धातु से सिद्ध होता है।

(ग) सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि।

इसमें सभी प्राणी आनन्दित रहते हैं। मत्स्य, मकरादि प्राणी पार्थिव समुद्र में समुदित रहते हैं। इसका निर्वचन सम् + मुद् धातु से सिद्ध होता है।

(घ) समुदको भवति।

यह सम्यक् (अत्यधिक) उदक से युक्त होता है। पार्थिव समुद्र और अन्तरिक्ष दोनों में ही अनन्त जलराशि होता है। यह शब्द सम् + उद + कन् प्रत्यय से बनता है।

(ङ) समुनत्तती ति वा।

यह समुन्दन करता है, अर्थात् पूरी तरह भिगो देता है। यह समपूर्वक 'उन्दी क्लेदने' धातु से सिद्ध होता है। इस प्रकार से निरुक्त में समुद्र शब्द को विभिन्न आधारों पर सिद्ध किया गया है।

सागर में जीवित प्राणियों के सभी प्रमुख समूह जैसे कि जीवाणु, प्रोटिस्ट, शैवाल, कवक, पादप और जीव पाए जाते हैं। माना जाता है कि जीवन की उत्पत्ति सागर में ही हुई थी, साथ ही यहाँ पर ही जीवों के बड़े समूहों में से कई जीवों का विकास हुआ। सागरों में पर्यावास और पारिस्थितिकी प्रणालियों की एक विस्तृत श्रंखला समाहित है।

सागर दुनिया भर के लोगों के लिए भोजन, मुख्य रूप से मछली उपलब्ध कराता है, किन्तु इसके साथ ही यह कस्तूरों, सागरीय स्तनधारी जीवों और सागरीय शैवाल की भी पर्याप्त आपूर्ति करता है। इनमें से कुछ को मछुआरों द्वारा पकड़ा जाता है, तो कुछ की खेती पानी के भीतर की जाती है। सागर के अन्य मानव उपयोगों में व्यापार, यात्रा, खनिज दोहन, बिजली उत्पादन और नौसैनिक युद्ध शामिल हैं, वहीं आनन्द के लिए की गयी गतिविधियों जैसे कि तैराकी, नौकायन और स्कूब डाइविंग के लिए भी सागर एक आधार प्रदान करता है। इन गतिविधियों में से कई गतिविधियाँ सागरीय प्रदूषण का कारण बनती हैं। मानव संस्कृति में सागर महत्त्वपूर्ण है और इसका प्रयोग सिनेमा, शास्त्रीय संगीत, साहित्य रंगमंच और कलाओं में बहुतायत से किया जाता है। हिन्दू संस्कृति में सागर को एक देव के रूप में वर्णित किया गया है। विश्व के कई हिस्सों में प्रचलित पौराणिक कथाओं में सागर को विभिन्न रूपों में दर्शाया गया है। सागर के कई पयार्यवाची शब्द हैं, जिनमें जलधि, जलनिधि, नीरनिधि, उदधि, पयोधि, नदीश, तोयनिधि, कम्पती, वारीश, अर्णव आदि प्रमुख हैं।

अर्थवेद में समुद्र का विशेष वर्णन किया गया है जिससे सम्बन्धित प्रमुख मन्त्र निम्न हैं–

यासां द्यौश्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूल विरूधां बभूव।

जिन ओषधियों के पिता द्युलोक और माता पृथ्वी हैं तथा जिनकी वृद्धि का मूल कारण समुद्र (जल) है, वे दिव्य ओषधियाँ पुत्र लाभ के लिए आपकी विशेष रूप से रक्षा करें।

समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः।

समुद्र में द्वीप की तरह अप (सृष्टि के मूल तत्त्व) में व्याघ्र एवं सिंह जैसे पराक्रमी को यह दिव्य धाराएँ महान सौभाग्य के लिए प्रेरित और विभूषित करती हैं।

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः।

समुद्र से पैदा हुआ यह शंखमणि तथा मेघों से उत्पन्न सूर्य सदृश यह देवताओं एवं असुरों के अस्त्रों से हमारी रक्षा करें।

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा पारावतः।

ये दो वायु, एक समुद्र पर्यन्त और दूसरे समुद्र से सुदूर प्रवाहित होते हैं। उन दोनों में से एक तो आपको अर्थात् स्तोता को बल प्रदान करे और दूसरे आपके पापों को विनष्ट करे।

पूर्व और पश्चिम दिशा के दोनों ओर के समुद्र भी वरुणदेव की दोनों कोखें हैं। आप समुद्र की पत्नियाँ हैं, समुद्र आपका सम्राट है। हे निरन्तर बहती हुई जलधाराओं! आप हमें पीड़ा से मुक्त होने वाले रोग का निदान करें, उपचार दें, जिससे हम आपके स्वजन नीरोग होकर अन्नादि बल देने वाली वस्तुओं का उपभोग कर सकें।

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति।

बहुत अधिक जड़ों वाला, समुद्र (जल की अधिकता) के समीप उत्पन्न होने वाला, पृथ्वी से उगा हुआ यह दर्भ क्रोध को शान्त करने वाला बतलाया गया है।

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम्।

हमारा घर जलपूर्ण रहे। वह बड़ी जलराशियों के निकट हो। हे अग्ने! आप अपनी ज्वालाओं को पीछे करें।

जिस प्रकार समुद्र, नदी को पीकर अपने में समा लेता है।उसी प्रकार ये ओषधियाँ रोगों को अपने में समाहित कर लें।

जिनकी माता पृथ्वी, पिता द्युलोक तथा मूल स्थान समुद्र अर्थात् जल है, ऐसी ओषधियाँ दैवी प्रकोप से अभिप्रेरित रोग के प्रभाव से इस मनुष्य को बचाये।

गौ (वाणी) निश्चित ही शब्द करती हुई जल अर्थात्, रसों को हिलाती या तरंगित करती है। वह गौ अर्थात् काव्यमयी वाणी एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पदों वाले छन्दों में विभाजित होती हुई सहस्त्र अक्षरों से युक्त होती है। उसके रस समुद्र में क्षरित प्रवाहित होते हैं।

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन।

अर्थात् हे अप् प्रवाहो! हम आपको समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष की ओर भेजते हैं। आप अपने उद्गम स्थल में विलीन हो जायें। आपकी गति सभी जगह है।

समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः।

यह स्कम्भ कौन सा है? जहाँ पुरुष, अमृत और मृत्यु भली प्रकार से समाहित है, समुद्र जिसकी नाड़ियाँ हैं।

वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह।

सोम तथा समस्त पैर वालों के साथ वशा गौ सुसंगत हो जाती है। वह कलि अर्थात् ध्वनि करने वाले गन्धर्वों के साथ समुद्र पर भी प्रतिष्ठित होती है।

द्युलोक, नक्षत्र, भूमि, यक्ष, पर्वत, सातो समुद्रों, नदियों और जलाशयों की हम स्तुति करते हैं। वे सभी हमें पापों से संरक्षित करें।

उस अवशेष में द्युलोक और पृथ्वी के सभी प्राणी समाहित हैं। जल, समुद्र, चन्द्रमा और वायु ये सभी उसी उच्छिष्ट स्वरूप ब्रह्म में विद्यमान है।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।

अर्थात् हमारी जिस मातृभूमि में सागर, महासागर, नद, नदी, नहर, झीलें–तालाब, कुएँ

आदि जल साधन हैं, जहाँ सब भाँति के अन्न, फल तथा शाक आदि अत्यधिक मात्रा में पैदा होते हैं, जिसके सभी प्राणी सुखी हैं।

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा। एवा त्वं सम्राज्येधि पत्युरस्तं परेत्ये।।

जिस प्रकार रत्नवर्षक महासागर नदियों के साम्राज्य का उपभोग करते हैं, उसी प्रकार पतिगृह में पहुँचकर वधू स्वयं को उसकी साम्राज्ञी मानकर गृहस्थ–साम्राज्य का सञ्चालन करे।

स महिमा सद्बुर्भूत्वान्तं पृथिव्या आगच्छत् स समुद्रोऽभवत्।

वह विराट व्रात्य समर्थ होकर तीव्रता पूर्वक पृथ्वी के अन्तिम छोर तक गया और समुद्र में परिवर्तित हो गया।

अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि।

हे जल के भीतर के उत्तम अंश! हम आपको समुद्र की ओर विसर्जित करते हैं।

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा।

हमारे हृदय सन्तापरहित हों, विशाल गौ अर्थात् पृथ्वी हो। धारण क्षमता के द्वारा हम समुद्र के समान हों।

विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अध्या इवेरते।

यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम्।।

इस गुग्गुल की सुगन्ध से यक्ष्मा आदि रोग उसी प्रकार सभी दिशाओं में पलायन कर जाते हैं जिस प्रकार शीघ्रगामी अश्व और मृग दौड़ जाते हैं। यह गुग्गुल (गुल्गुलु) नामक ओषधि नदी या समुद्र के तट पर उत्पन्न होती है।

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।

हे इन्द्रदेव! जिस शब्द से आपने समुद्र तथा विशाल नदियों का निर्माण किया है, वह शक्ति हमारे अभीष्ट को पूर्ण करने वाली है।

येना दशग्वमघ्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम्। येना समुद्रमाविथा तमीमहे।

हे इन्द्रदेव! जिस शक्ति से आपने 'अंगिरावंशीय अघ्रिगु' के अंधेरे को नष्ट करने वाले सूर्य की तथा समुद्र या अन्तरिक्ष की रक्षा की थी, उसी शक्ति की हम आपसे याचना करते हैं।

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते।

अत्यधिक सोमपान करने वाले इन्द्रदेव का उदर समुद्र की तरह विशाल हो जाता है।

ऋग्वेद में भी समुद्र को जल भण्डारण में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है–

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना नयन्त्यनिविशमानाः।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।

जिन जलों में समुद्र ज्येष्ठ है, वे सदा गमनशील और शोषक जल समूह अन्तरिक्ष के बीच से आते हैं। वज्रधर और अभीष्ट वर्षक जिनको छोड़ दिया था, वे जल देवता यहाँ हमारी रक्षा करें। रक्षा वही कर सकता है जो स्वच्छ हो, स्वस्थ हो। यदि हम अपनी रक्षा के लिए जल से प्रार्थना करते हैं तो जल भी हमसे अपेक्षा रखते हैं कि उन्हें हम प्रदूषित न करें क्योंकि जल शुद्ध और स्वच्छ रहकर ही हमारी रक्षा कर सकेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अथर्ववेद के विभिन्न मन्त्रों में पर्यावरण संरक्षण के लिए जन–जाग्रति और समाधान के मार्गों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। इसमें पर्यावरण के विविध पक्षों, मानवीय सम्बन्धों, घटकों, पारिस्थितिक तन्त्र, प्रदूषण, शहरीकरण, जनसंख्या व उनके द्वारा होने वाले प्रभाव का ज्ञान कराया गया है। पर्यावरण विषयक शिक्षा से इसकी गुणवत्ता व उपादेयता का संरक्षण सम्भव है। मानव सभ्यता व संस्कृति के विकास में पर्यावरण का विशेष योगदान रहा है। अथर्ववेद में निहित पर्यावरणीय शिक्षा से वर्त्तमान व भविष्य की समस्याओं का निदान होना सम्भव है। इससे पर्यावरण संरक्षण के

प्रति जाग्रति उत्पन्न होगी। इसके माध्यम से प्रकृति व पर्यावरण के सम्बन्ध में समग्र ज्ञान का बोध होगा क्योंकि अथर्ववेद मानव जीवन की सभ्यता व संस्कृतियों से जुड़ा हुआ अनुपम ग्रन्थ है। इसमें पर्यावरण के सभी प्रकार के अंकों का वर्णन प्राप्त होता है, जिसके ज्ञान से हम अपने आपको एवं इस जगत् को कल्याणकारी बना सकते हैं।

सन्दर्भ

1 प्रादयः उपसर्गाः क्रिया योगे, अष्टाध्यायी, 1/4/56, गतिश्च,तदेव, 1/4/59
2 इकोयणचि, तदेव, 6/1/74
3 'वृ' संवरणे संस्कृत धातु पाठ, पाणिनि, पृ0 20
4 अदेङ् गुणः।, अष्टाध्यायी, 1/1/2
5 ल्युट् च।, तदेव, 3/3/115
6 हलन्त्यं। तदेव, 6/2/28, लशक्वतद्धिते, तदेव, 1/3/8
7 युवोरनाकौ।, तदेव, 7/1/1
8 रषाभ्यां नो णः समानपदे।, तदेव, 8/4/1
9 निरुक्त, डॉ0 गंगासहायएवं डॉ0 एच0एन0 यादव, पृ0 59
10 तदेव, पृ0 59
11 तदेव, पृ0 60
12 तदेव, पृ0 60
13 https://hi.wikipedia.org/w/index.php?
14 अथर्ववेद, 3/26/6
15 तदेव, 4/8/7
16 तदेव, 4/10/5
17 तदेव, 4/13/2
18 उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी। तदेव, 4/16/3
19 सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन। तदेव, 6/24/3
20 तदेव, 6/43/2
21 तदेव, 6/106/2
22 यत पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः।' तदेव, 6/135/2
23 यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरूधां बभूव। तदेव, 8/7/2
24 समुद्रा अधि विक्षरन्ति।,तदेव, 9/15/21
25 तदेव, $^{10/5/23}$
26 तदेव, 10/7/15
27 तदेव, 10/10/13
28 'समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुचन्त्वंहसः।तदेव, 11/8/10
29 आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः।,तदेव, 11/9/2
30 तदेव, 12/1/3
31 तदेव, 14/1/43
32 तदेव, 15/7/1
33 तदेव, 16/1/6
34 तदेव, 16/3/6
35 तदेव, 19/38/2
36 तदेव, 20/9/4
37 तदेव, 2/63/8
38 तदेव, 20/71/3
39 ऋग्वेद' 7/49/1